धर्मो रक्षति रक्षित:

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः ।
(धर्म का नाश करने वाले का धर्म नाश करता है,
धर्म की रक्षा करने वाले की धर्म रक्षा करता है।)

यह मनु-स्मृति का श्लोक सहस्त्रों वर्ष पूर्व, जब यहूदी, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुस्लमान, सिख आदि नहीं थे, तब कहा गया था। श्लोक में धर्म के नाश व रक्षा की बात कही गई है। इस श्लोक को भली प्रकार समझने के लिए उस समय के ऋषियों का 'धर्म' से क्या अभिप्राय था समझना होगा।

आज हम समाज में देखते हैं कि धर्म, पंथ, मत, संप्रदाय सभी एक दूजे के प्रयाय बन चुके हैं। हम सभी के लिए 'धर्म' शब्द का प्रयोग करते हैं। वास्तव में यह सही नहीं हैं। धर्म को सम्प्रदाय या पंथ से जोड़ कर देखना वास्तव में धर्म की समझ को सीमित करना है। **चूंकि पश्चिमी-जगत का संबद्ध केवल सम्प्रदाय या "विश्वास" से है अतः वह भारतीय-दृष्टि से अनभिज्ञ रहते हुए "धर्म" को भी "मज़हब" बताता रहता है जो नितांत ग़लत है।** आज धर्म के जिस रूप को प्रचारित एवं व्याख्यायित किया जा रहा है उससे बचने की आवश्यकता है। वास्तव में धर्म संप्रदाय, पंथ, मत नहीं है। **भारतीय ऋषियों का 'धर्म' से तात्पर्य भिन्न है।**

जब बच्चा जन्म लेता है वह अबोध होता है। उसे किसी बात का ज्ञान नही होता। माता-पिता की छत्र-छाया मे उसका पालन-पोषण होता है। जैसे-जैसे वह बडा होता है संसार से उसका संपर्क होने लगता है। उसे विष्य-वासनाओं का ज्ञान होने लगता है। ये विषय-विकार उसे घेरने लगते है और उसे समझ आने लगता है कि इस संसार मे केवल सुख ही नही, दुख भी हैं। जब मनुष्य दुखी हो जाता है तब वह इन दुखों से बचने का उपाय ढूंढता है। स्वयं को सुखी बनाना, दुखों से बचना यह हर व्यक्ति का अपने प्रति कर्त्तव्य है। जीवन में उस बालक को, उस व्यक्ति को वह सब धारण करना है जिससे वह इन दुखों से बच सके। इन दुखों से बचने पर ही वह अपना जीवन अच्छे से बिता पावेगा, अपना जीवन सार्थक बना पावेगा। जीवन में हर उस कार्य, पद्धति, दर्शन को धारण करना जिससे की हमारा जीवन दुखों से रहित हो हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए।

यह हमारा कर्त्तव्य, अपने जीवन को दुखों से रहित करना और उसके लिए जो भी धारण करने योग्य है उसे धारण करना, ही धर्म है। **(दुख - सुख क्या हैं; एक अन्य लेख में)**

भारत के पश्चिम में मध्यकालीन युग में जन्मे, विकसित हुए मत-मतान्तर, पंथ एवं दर्शन (ईसाईयत व इस्लाम) के निम्न चार प्रमुख स्तंभ थे
- स्वर्ग की कल्पना
- सृष्टि एवं जीवों के रचयिता, कर्ता रूप में ईश्वर की कल्पना
- जीवन की निरर्थकता का बोध (वास्तविक सुख स्वर्ग)
- भगवान का वचन सत्य है, क्योंकि भगवान ने ही सत्य की स्थापना की है

उस समय के पंथ वालों ने, तथाकथित धर्म के व्याख्याताओं ने संसार के प्रत्येक क्रियाकलाप को ईश्वर की इच्छा माना तथा मनुष्य को ईश्वर के हाथों की कठपुतली के रूप में स्वीकार किया। दार्शनिकों ने व्यक्ति के उस समय के वर्तमान जीवन में विपत्तियों में पड़े होने, दुखी होने का कारण **'कर्म-सिद्धान्त'** के सूत्रों को निर्धारित किया।
(ईसाईयत व इस्लाम से पहले उस क्षेत्र में यहूदी पंथ था। यहूदी पंथ के अनुसार एक व्यक्ति जो कुछ भी करना चाहता है उसे वह करने की स्वतंत्रता है परन्तु अपने कार्यों के लिए वह स्वयं ही जिम्मेदार होगा। इसे वे "स्वतंत्र इच्छा" कहते हैं। परमेश्वर उन लोगों को पुरस्कृत करता है जो अच्छे कार्य करते हैं और बुरे कार्यों को करने वाले लोगों को दंडित करता हैं। अंतिम पुरस्कार अथवा दंड प्रभु व्यक्ति की आत्मा को उसकी मृत्यु के पश्चात देता है।)

उस समय के लोगों ने उनकी सारी मुसीबतों का कारण 'भाग्य' अथवा 'ईश्वर की मर्जी' को मान लिया।

पूर्व हो या पश्चिम सभी ने दुखों से छुटकारा पाने के लिए ही उपाय बताए हैं। प्राचीन भारत के लोगों के लिए और यहाँ के भिन्न मतों (सनातन, जैन, बौद्ध, व सिख) के लिए दुखों से छुटकारा मनुष्य के जन्म-मरण के चक्र से बाहिर निकल मोक्ष (निर्वाण) को पाना है तो पश्चिम मे जन्में मतों के लिए स्वर्ग को पाना ***(जिसे मृत्यु के बाद ही पाया जा सकता है)***, दुखों से छुटकारा है।

Dharmo Rakshati Rakshita

Dharm aiv hato hanti, Dharmo Rakshati Rakshita
(Dharm destroys one who destroys it,
Dharm protects one who protects it)

This verse from Manu Smriti was said thousands of years ago, when there were no Jews, Buddhists, Jains, Christians, Muslims, and Sikhs. This verse speaks about destruction and protection of Dharm. To understand this verse aptly, one would have to understand what the sages of that time meant by 'Dharm'.

Today, in society, we see that religion, creed, faith and sect have all become synonyms of each other. In general, the word 'religion' is used for all of these. To associate 'Dharm' with a sect, belief or creed limits the understanding of Dharm from Hindu perspective. **Since the western world is associated with the "sect" or "faith", it remains ignorant of the Indian point of view and also defines "beliefs and practices" as "religion" which is absolutely wrong.** There is a need to distance oneself from the form of religion being propagated and interpreted today. In fact, Dharm is not a sect, creed or faith. **The Indian rishis (sages) had a different significance of 'Dharm'.**

When a child is born it is ignorant. As it grows up, it comes in contact with the worldly things and gains awareness about craving, lust and responsibilities. He begins to understand that in this world he is surrounded by not only happiness but also sorrow. When in grief, he tries to find a way to overcome it. It is the duty of every person to avoid suffering. By avoiding these miseries the person will be able to spend his life peacefully and make it meaningful. It should be our duty to accept every action, methodology, philosophy in life to make our life free from suffering.

This duty of ours, to rid our lives from miseries and to accept, whatever is necessary to achieve it, is Dharm. This is not religion. ***(Sorrow - Happiness in another article)***

During the medieval period two philosophies (religions) originated west of India. Christianity and Islam have the following four major pillars of their philosophies.
- Concept of heaven
- God is creator of the universe and is sovereign over it
- Realization of the futility of life (real happiness is heaven)
- The word of God is the truth, because it is God who has established the truth

The philosophers, the thinkers of the so-called religion at that time, defined every activity in the world as the 'will of God' and accepted human-being as a puppet in the hands of God. Philosophers determined the actions of a person ***('karma')***, as the reason for him being in misery and sorrow in his existing life. ***(Prior to Christianity and Islam, people living in that area were Jews. According to Jews, a person has the freedom to do whatever he wants to do but he will be solely responsible for his actions. This is called "free will". God rewards those who do good deeds and punishes those who do evil deeds. The ultimate reward or punishment for a person's soul is after his death.)***

During that period people accepted 'fate' or `God's will´ as the reason for all their troubles.

East or West, all have suggested ways to get rid of sorrows. For the people of ancient India and the different faiths here (Sanatan, Jain, Buddhist, and Sikh), to get rid of suffering means to get out of the cycle of birth and death (attain salvation or nirvana). For the faiths (religions) originating in the west to be in heaven, ***(which is possible only after death)*** is the ultimate relief from suffering.

According to Christianity and Islam, it is necessary for the Lord to be pleased to get into heaven. The 'way' how God

www.humnaabhooleen.com

ईसाइयत व इस्लाम के अनुसार स्वर्ग को पाने के लिए प्रभु का प्रसन्न होना अनिवार्य है। प्रभु को कैसे प्रसन्न किया जा सकता है उसके लिए उनके पैगम्बरों व गुरुओं द्वारा एक मार्ग (पथ) बताया गया है मनुष्य इस मार्ग से कदाचित भटक न जाए इसके लिए कई नियम व प्रतिबन्ध बताए गए हैं।

यहूदियों में स्वर्ग-नरक स्पष्ट नहीं है मृत्यु के पश्चात आत्मा कहां रहेगी यह भी स्पष्ट नहीं है। यहूदियों का मानना है कि प्रभु ने उन्हें, उनकी आसमानी किताब **'तोरा'** में जीवन जीने की राह बताई हैं जिसका उन्हें पालन करना चाहिए। यहूदी मानते हैं कि भगवान ने उन्हें दुनिया की मरम्मत का एक विशेष काम दिया है ("**टिक्कुन ओलम**")। लोगों की पीड़ा (दुखों) को कम करने के लिए दुनिया की मरम्मत में वे खुद को भगवान के साथी के रूप में देखते हैं।

हम न भूलें कि

- 'भोगों' को प्राप्त करना दुख का निवारण नही है। भोगों को पाने की लालसा नए दुखों को जन्म देती है और हमें अपने मुख्य उद्देश्य, मोक्ष (जहाँ कोई दुःख नहीं), से दूर ले जाती है, भारत के मत-मतांतर ऐसा बताते हैं।
- 'भोगों' से सुख मिलता है और उससे जीवन अच्छा होता है, ईसाई मत है। भोग को प्राप्त करने के लिए कष्ट क्यों? और भोग प्राप्त होने के बाद भी कष्ट क्यों? इसे 'भाग्य' समझो, ऐसा ईसाई कहते हैं।
- इस्लाम जीवन को कुरान के दिशानिर्देशों अनुसार व पैगम्बर मोहम्मद की जीवनी अनुसार बिताने को कहता है। इस्लाम 'भोगों' के संबंध में स्पष्ट नहीं है। ये जायज़ (सही) या नजायज़ (गलत) हो सकते हैं।
- ईसाईयत व इस्लाम अनुसार आपको स्वर्ग उनकी शरण में आने पर ही मिलेगा। आप कभी भी उनकी शरण में आ सकते है। आपने जीवन भर क्या किया इसका कोई महत्त्व नहीं। शरण में आने के बाद मात्र उनके मत के बताए मार्ग पर चलने से आपका स्वर्ग निश्चित है।
- हमारा परम उद्देश्य अपने जीवन को दुखों से रहित करना होना चाहिए। अपने जीवन को दुखों से रहित करने के लिए हमें वह सब करना है जिससे दुःख कम हो सके।
- 'भोग' मिलने पर या तो नई इच्छाओं को जन्म देते हैं या प्राप्त की गई खुशी को बनाए रखने के लिए नई चिंताओं को जन्म देते हैं, ये नित नए दुखों को जन्म देते हैं अत: धारण करने योग्य नहीं। यदि मै इन भोगों को स्वीकार करता हूँ तो मैंने धर्म को हानि पहुंचाई (जो धारण करने योग्य नहीं, उसे धारण किया) परिणाम स्वरूप मै इन भोगों में लिप्त होता जाऊंगा और यह होगी धर्म द्वारा मेरी हानि । *(चूँकि वह धारण किया जो धारण करने योग्य नहीं था)*
- ज्ञान लेने से मै दुखों से अपना बचाव कर सकता हूँ और मुझे यह अवश्य धारण करना चाहिए। यदि मै सही ज्ञान को समझूंगा, तो वह मुझे उस मार्ग पर जाने से रोकेगा जिस पर मुझे दुःख मिल सकते है और मै अपने मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से भटक सकता हूँ। यह होगी धर्म द्वारा मेरी रक्षा। *(वह धारण किया जो धारण करने योग्य था)*
- भिन्न-भिन्न दायित्वों में व्यक्ति के कष्ट भिन्न होते हैं, उसकी चिन्ताएँ भिन्न होती हैं। उन चिंताओं से मुक्त होने के समाधान भिन्न होते हैं जिन्हें व्यक्ति दुखी न होने के लिए धारण करता है। यदि समाधानों (नियमों) को बाधित (हानि) किया जावेगा तो नियमों की अनुपस्थिति में उसे हानि होगी। और यदि नियमों का सही से पालन होगा (रक्षा) तो नियम उसकी रक्षा करेंगे और उसके जीवन में दुःख कम होगा।
  भिन्न क्षेत्रों में भिन्न चिंताओं के निवारण के भिन्न समाधानों के धारण करने से भिन्न परिस्थितियों में धर्म भिन्न होता है। हम सभी ने राजधर्म, गुरुधर्म, ऋषिधर्म, छात्रधर्म, समाजधर्म, स्त्रीधर्म, आदि सुने हैं।
- वे सभी, जैसे जल, वायु, वनस्पति, पशु-पक्षी, प्राणी, समाज आदि जिनके संपर्क में हम आते हैं, जो दुखों को कम करने में हमारी मदद करते हैं, हमारे लिए धारण करने योग्य है और हमें इन्हे हानि नहीं अपितु इनकी रक्षा करनी है **(वसुधैव कुटुम्बकम्: एक अन्य लेख में)**। यदि मै इन्हे हानि पहुँचाऊँगा तो मुझे अपने उद्देश्य (दुखों से छुटकारा) को पाने में इनका सहयोग नहीं मिलेगा और यह इनके द्वारा मेरी हानि होगी। मुझे इन सबका संरक्षण करना है, अर्थात इनको धारण करना है और तभी मुझे अपनी उद्देश्यपूर्ति के लिए इनका सहयोग मिलेगा जो इनके द्वारा मेरी रक्षा होगी।
  - **जैसी करनी वैसी भरनी**
  - विज्ञान की दृष्टि से: **प्रत्येक क्रिया की समान एवं विपरीत प्रतिक्रिया होती है**

can be pleased has been told by their prophets and holy mentors. Many rules and restrictions have been defined to ensure that a person does not deviate from this path.

Jews do not have clarity about heaven and hell. Where the soul will live after death is also not made clear. The Jews believe that God has shown them the way to live in their holy book `**Torah**´ which they must follow. Jews believe that God has given them a special task to mend the world ("**Tikkun Olam**"). They see themselves as God's partner in mending the world to reduce suffering of people.

Let us not forget that

- Gaining 'pleasure' is not a remedy for suffering. The craving for enjoyment gives rise to new sorrows and leads us away from salvation (where there is no sorrow), our main objective is highlighted by the philosophies originating in India.
- 'Pleasures' bring happiness and make life better is the belief of Christianity. You may suffer to get something which may give you pleasure and if you are not happy later, it is your 'fate'.
- Islam instructs to live life according to the guidelines of the Quran and biography of Prophet Mohammad. Islam is not clear in regard to 'pleasures'. They can be legitimate (right) or not.
- According to Christianity and Islam, you can get into heaven only if you become a Christian or Muslim. You can accept Christianity or Islam anytime. After accepting Christianity or Islam, just by following the path of their faith, you can ensure a place in heaven for yourself irrespective of whatever you may have done earlier.
- Our ultimate aim should be to free our lives from suffering. We must do everything possible to achieve this.
- 'Desires' on fulfillment give birth to either new desires or new worries on how to maintain the achieved pleasure, hence must be discarded. If I accept these desires, then I harm my 'Dharm' *(I have accepted that, which is not worth holding)*. As a result, I will get distracted from my main goal.
- By embracing knowledge, I can protect myself from sorrows. If I understand the subjects and become wise, it will prevent me from going down the path of suffering and I will not deviate from my aim to achieve salvation. This will be my protection by my 'Dharm'. *(I accepted that, which was worthy)*
- In different responsibilities and aspects of life, a person's sufferings are different, his worries are different. Different solutions are accepted by him to be free from the anxieties and to be happy. If solutions (rules and regulations) are not followed properly *(harm)*, then the person will suffer harm. If the rules are followed properly *(protected)* then these rules will protect him and the person will have less misery in his life.
  In different aspects of life to get relief we accept different solutions. What we accept and follow differs under different conditions which means that Dharm varies according to life circumstances. We have definitely heard about: Rajdharm, Gurudharm, Rishidharm, Chatrdharm, Samajdharm, Stridharm
- All, such as water, air, flora and fauna, human-beings, society, etc., with whom we come in contact, who help us in reducing our miseries, are worthy of holding on to **(Vasudhaiv Kutumbakam: in another article)**. We should not harm them but protect them. If I harm them, I will not get their support to achieve my goal (to get rid of sorrows) and this will be the loss incurred on me by them (floods, drought, natural imbalance, wars, etc.). I have to protect them. This will be me holding on to them and then I will definitely get their support (abundance of resources for everyone to lead a satisfied life) to reduce my sorrows. This will be them protecting me.
  - **As you sow, so shall you reap**
  - Scientific approach: **every action has an equal and opposite reaction**

www.humnaabhooleen.com